सन्देश संख्या ३४

धार्मिक परम्परायें और क्रियायोग

विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और पंथों की समस्त पद्धतियाँ एवं पथ मन के अन्दर निर्मित होते हैं और इसीलिए अयथार्थ की ओर ले जाते हैं। सभी पंथ आपको बुद्धि और अनुभव के अन्दर उलझा देते हैं। बुद्धि और अनुभव सीमित हैं, जबकि चैतन्य और अस्तित्व असीमित हैं। वास्तव में यथार्थ, सत्य अथवा जिन्हें आप ईश्वर कह सकते हैं, की ओर ले जाने वाला कोई पथ है ही नहीं।

बौद्ध धर्म ज्ञानोदय का मार्ग नहीं हो सकता क्योंकि यह तो महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त होने के बहुत बाद प्रतिपादित हुआ है। बुद्ध स्वयं बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं थे। ईसाई धर्म और इसके असंख्य पंथ ईसा मसीह के दिव्य सत्ता में लय हो जाने के पश्चात् ही आये और इसलिए ये उस दिव्य यीशु की ओर नहीं ले जा सकते हैं। यीशु भी ईसाई धर्मावलम्बी नहीं थे।

वैष्णववाद अपने भावात्मक आसक्ति तथा कोमल भावुकता के माध्यम से आपको कृष्ण (पूर्ण चैतन्य) की ओर नहीं ले जा सकता है। यह सब तो कृष्ण के शाश्वतत्व में विलीन हो जाने के बहुत बाद सतह पर आया।

इस्लामी कट्टरता एवम् उग्रता भी आपको ईश्वर (पूर्ण चैतन्य) की ओर नहीं ले जा सकती है। यह सब मुहम्मद साहब के रहस्यमय ढंग से पूर्ण चैतन्य से संयुक्त होने के पश्चात् ही उभर कर सामने आया।

क्रियायोग मोक्ष प्राप्त करने की पद्धति नहीं है। यह समस्त वादों द्वारा निर्धारित पद्धतियों के अंधानुपालन और अपने बनावटीपन का अन्त है। क्रियायोग की सरल क्रियाओं (तापस) का उद्देश्य स्वाध्याय (हमारे मन की गतिविधियों की कलाबाजियों पर पुनर्पुनर्चिन्तन) के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली समझदारी की झलकों में सामंजस्य लाना है। यह सामंजस्य हमारी स्वाभाविक अवस्था पर विचारों के जाल की गलाघोंटू पकड़ से मुक्त होने के कारण सaभव हो पाता है। यह ऊर्जा और अस्तित्व की अवस्था है, न कि अनुभव और अहंकेन्द्रित गतिविधियों की।

परम्परायें तो नकल होती हैं। यही कारण है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध आदि होना आसान है किन्तु एक सच्चा धार्मिक – क्रियायोगी, होना कठिन है। क्रियायोग बिना परम्परा विरोधी हुए परम्परा से मुक्ति है। इस मुक्ति के कारण संस्कृति एवं परम्परा के योगदान से उत्पन्न चित्तवृत्ति की अनुबन्धित प्रतिक्रियायें धीरे–धीरे समाप्त होने लगती हैं। क्रियायोग हमारी श्रेष्ठ संभावना (अन्तःशक्ति) का उद्घाटन एवं सर्वोच्च समझदारी की ऊर्जा का प्रकटीकरण है। विचार तो चारों ओर गूँजते ही रहेंगे, परन्तु क्रियायोग के द्वारा उन विचारों को प्रश्रय देनेवाली आधार–इकाई विलुप्त हो जाती है ड्गलस्वरूप उनका मायावी खेल समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में हमारे ध्यानकक्ष की दीवारें भी उतनी ही सुन्दर हो जाती हैं जितनी कि गुलाब वाटिका अथवा बाहर की पर्वत–श्रृंखला।

विचार से ही समाज, परम्परा, वाद, संगठित धर्म आदि की उत्पत्ति होती है। परन्तु दो विचारों के मध्य जो अन्तराल यानी कि शून्यता है वही पूर्ण चैतन्य है। विचारों के इसी अन्तराल में बुद्ध, ईसा मसीह, कृष्ण, मुहम्मद आदि का आविर्भाव होता है और विचारों की निरन्तरता में बौद्ध, ईसाइयत, हिन्दुत्व एवम् इस्लाम क्रियाशील रहते हैं। जिस क्षण किसी विचार को अभिव्यक्त किया जाता है, उसी क्षण खण्डित मानसिकता की शुरूआत होती है। जिस क्षण हम कहते हैं कि ''यह सुन्दर है'' उसी क्षण हम अन्यत्र कहीं की कुरूपता स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए घृणा हमारे 'तथाकथित प्रेम' का अनुसरण करती है। जिस क्षण कोई यह कहता है कि ''तुम मेरे मित्र हो'' वह कहीं पर शत्रुता का बीज बो चुका होता है। मन द्वैत में, विरोधी–युग्मों में विचरण करता है। इसीलिए सौन्दर्य, प्रेम, मैत्री, प्रज्ञा आदि मन के परे हैं। निर्मनावस्था ही इनका अस्तित्व है।

मौन सच्ची प्रार्थना है। शब्दों में की गई प्रार्थना हमें ईश्वर का सलाहकार बना देती है अर्थात् हम ईश्वर को सुझाव देने लगते हैं कि क्या होना चाहिए और क्या नहीं। ईश्वर को सलाह देने वाले हम होते कौन हैं? सच्ची प्रार्थना के समय आप अपनी ओर से कोई अन्य शब्द नहीं बोल पाते हैं बल्कि केवल प्रणव ही रह जाता है। तब सत्य शब्दों का तर्कजाल नहीं रह जाता है। यह तो सृ िकी विस्मयकारी विसंगति है। पूर्ण रूप से समझदार (प्रकृतिस्थ) होने के लिए अपने आपको अपरिभाषित करें। क्रियायोग काल और मन की सीमा से बाहर निकलकर कालशून्यता तथा शाश्वतता की अवस्था में रहने की शुरूआत है। क्रियायोग में जिस मुक्ति की बात की गई है, वह बन्धन के परे है न कि बन्धन के विरूद्ध। क्रियायोग मानव को अनुरागी से वीतरागी नहीं बनाता है बल्कि संसार में वैराग्यपूर्ण जीवन जीने के योग्य बनाता है और इसे बेहतर बनाने के लिए ऊर्जान्वित करता है। क्रियायोग मौन का संगीत, शरीर की निश्चलता में होने वाला एक नृत्य तथा श्वास का आनन्द है। ऐसी स्थिति में, अपने हृदय का स्पन्दन पूरे बह्माण्ड का स्पन्दन बन जाता है। 'निर्मनावस्था' की वाणी मात्र बोलने वाले की भाषा नहीं बल्कि उसके मुख से स्ड्गुटित पूरे ब्रह्माण्ड की भाषा होती है। तब ये शब्द किसी धर्म विशेष के नहीं होते बल्कि सार्वभौम सत्य होते हैं।

ॐ सत्य ॐ